महाकवि कालिदास की शिवोपासना

भगवती सरस्वती के वरद पुत्र महाकवि कालिदास भारतीय साहित्य की श्रेष्ठ विभूति हैं। भारतीय संस्कृति के वे अनन्य उपासक और भारतवर्ष की उज्ज्वल कीर्ति के अमर अनुगायक एवं समुन्नायक हैं। भारतीय संस्कृति की कतिपय अद्वितीय विशेषताएँ हैं, जिनके कारण विश्वसंस्कृति में उसका अपना स्थान है। भारत सदा धर्मप्राण देश रहा है और भारतीय संस्कृति सर्वदा धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत रही है। भारतीय धर्म का आधार है सर्वशक्तिमान् भगवान् की सत्ता में अटूट विश्वास। भारतीय संस्कृति में प्राणिमात्र के सुख और कल्याण की कामना सर्वोपरि है। भारतीय चिन्तन में तो निखिल ब्रह्माण्ड के जीवनधारियों के कल्याण की मङ्गलकामना का भाव निहित है –

सर्वे हि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

महाकवि कालिदास की कृतियों में प्राणिमात्र के प्रति यही शुभ भावना व्यक्त मिलती है। साथ ही उनकी रचनाओं में प्रकृति के कण–कण के प्रति भी आत्मीयता का भाव मुखरित दीखता है। कालिदास की कृतियों में अभिव्यक्त यही सर्वव्यापक मङ्गलकामना उनकी अभीष्ट शिवाराधना है। शिव जगत् के मङ्गलकारक तत्त्व के ही पर्याय हैं। महाकवि इसी अर्थ में शिव की उपासना करते हैं। चराचर के प्रति इसी व्यापक सर्वकल्याण–भावना के उद्भावक के रूप में महाकवि का अपना स्वतन्त्र स्थान है। महाकवि कालिदास उदारचेता, सहिष्णु और परम आस्थावान् हैं। निम्नलिखित उद्धरण इस बात की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं –

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।। (विक्रमोर्वशीयम् 5/25)

अर्थात् सभी लोग अपनी कठिनाइयों से निजात पायें, सभी लोग आनंद प्राप्त करें, सभी की कामनायें पूर्ण हों तथा सर्वत्र लोग खुशी का अनुभव करें।

बलमार्त्तभयोपशान्तये। (रघुवंश 8/31)
आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्त्तुमनागसि। (अभिज्ञानशा. 1/11)

अर्थात् बल एवं शस्त्र का प्रयोग निर्दोषों एवं निष्पाप लोगों पर न करके जगत् की रक्षा एवं सेवा के लिये करना चाहिये।

कालिदास के अपने आराध्य भगवान् शिव उन्हें परमप्रिय हैं। उनके लगभग सभी ग्रन्थों का प्रारम्भ मङ्गल एवं आनन्दमूर्ति भगवान् शिव की स्तुति से होता है। उनकी शिवभक्ति उनके काव्यों और नाटकों के मङ्गलाचरण एवं काव्यगत विभिन्न स्थलों के अन्तर्भाव से स्पष्ट है। महाकाव्यों में 'रघुवंश' उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस कृति में महाकवि ने प्रतापी रघुवंशी राजाओं की धवल

कीर्ति का गान किया है, किंतु इस महाकाव्य में कवि ने सर्वप्रथम अपनी प्रणामाञ्जलि भगवान् शिव तथा जगज्जननी माता पार्वती के चरणों में ही अर्पित की है।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।। (रघुवंश 1/1)

'विशुद्ध शब्दार्थ के परिज्ञान के लिये शब्द एवं अर्थ की तरह परस्पर संश्लिष्ट सम्पूर्ण विश्व के माता-पिता अर्धनारीश्वर भगवान् शिव या शिव-पार्वती की मैं वन्दना करता हूँ।'

-इससे महाकवि की भगवान् आशुतोष के प्रति अनन्य भक्ति का संकेत मिलता है। उनकी कृति का वर्ण्य विषय चाहे ऐतिहासिक हो अथवा पौराणिक, चाहे वह रामायण से गृहीत हो अथवा महाभारत से, किंतु कृति का प्रारम्भ वे भगवान् शिव की स्तुति से ही करते हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के मंगलाचरण में वे शिव की अष्टमूर्तियों की वन्दना करते हुए कहते हैं-

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यमाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।। (अभिज्ञान. 1/1)

अर्थात्- सृष्टिकर्ता प्रजापति की प्रथम सृष्टि अर्थात् जलमूर्ति, विधिपूर्वक दी गयी आहुतियों का वहन करनेवाली अग्नि की मूर्ति तथा हवि प्रदान करनेवाली यजमानमूर्ति, दिन-रात इन दो समयों का निर्माण करनेवाली सूर्य-चन्द्र मूर्ति, जो कान का विषय या देवता है और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है, वह आकाशमूर्ति, सम्पूर्ण चराचर प्राणियों की बीजभूता धरित्री देवी और जो समस्त प्राणियों का प्राण-संचार करनेवाली वायुमूर्ति है- इन प्रत्यक्ष आठ मूर्तियों से व्याप्त भगवान् सर्वेश्वर शिव आप सब की रक्षा करें।

उनका महाकाव्य कुमारसम्भव तो भगवान् शिव की महिमा से ओतप्रोत है। सम्पूर्ण कुमारसम्भव शिवजी के महिमामय श्लोकों से परिपूर्ण है। अपने इस ग्रन्थ में कालिदास ने अन्तर्दृष्टि से शिव-तत्त्व का साक्षात्कार करने के बाद बाह्य-स्थूल दृष्टि से देखनेवाले लोगों को लक्ष्य करके कहा है-

न सन्ति यथार्थ्यविदः पिनाकिनः।। (कुमा. 5/77)

अर्थात्- शिव को यथार्थरूप से जाननेवाले और अनुभव करनेवाले मनुष्य कम हैं। शिव का पिनाक नामक धनुष कौन सा है, उनके मदन-दहन का क्या रहस्य है, वृष कौन है, गंगा और चन्द्रमा क्या हैं, 'भृगुपति' किसे कहते हैं, कैलास और उसपर स्थित मणितट क्या है?- इत्यादि प्रश्नों का समाधान ही शिव के स्वरूप का यथार्थ निरूपण है। कालिदास ने अपनी रचनाओं में शिव

के स्वरूप का निरूपण करने का प्रयास किया है। यहाँ पर हम नमूने के तौर पर शिवरहस्य संबंधी एकाध प्रंसगों पर विचार करेंगे। कवि ने इस ग्रन्थ में इस तथ्य को भी उजागर किया है कि बिना तपस्या के प्रेम कभी परिनिष्ठित नहीं होता। कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग में पार्वती की कठोर तपस्या का अत्यन्त उदात्त वर्णन है। उसी तप के बल पर ही पार्वती को भगवान् शिव की प्राप्ति हुई। बिना अपना शरीर तपाये धर्म की भावना उत्पन्न नहीं होती। जगज्जननी पार्वती ने भी घोर तपस्या करके ही अपना अभीष्ट प्राप्त किया। समग्र लोक के मङ्गल का भाव इसी तप में समाहित है।

पार्वती के प्रेम की परीक्षा के लिये ब्रह्मचारी के वेष में(कूटरूप से, अर्थात् रहस्यमय ढंग से, आत्मस्वरूप का परिचय देते हुए) शिव पार्वती से कहते हैं कि भला देखो तो सही शिव का रूप कितना कुरूप है, आँखें बन्दर-जैसी हैं, शरीर में चिता-भस्म और साँप लपेटे रहते हैं, उनके कुल, खानदान, माता-पिता, पितामह, जाति, गोत्र आदि का कोई पता नहीं है। खेती, व्यापार, अन्न, धन तथा गृह से भी वे शून्य हैं। एक दिन भोजनपान के लिये भी उनके पास कुछ नहीं है, तुमने ऐसे व्यक्ति से जो विवाह करने के लिये तप आरंभ किया है तो भला तुमसे बढ़ कर संसार में मूर्ख कौन हो सकता है-

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।।

(कुमारसंभव, सर्ग 5/72)

इसके उत्तर में भगवती पार्वती कहती हैं-

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति यथार्थ्यविदः पिनाकिनः।।

(कुमारसंभव, सर्ग 5/77)

अर्थात्-'वे स्वयं अकिंचन हैं किन्तु ब्रह्माण्ड की सब सम्पत्तियाँ उन्हीं से उत्पन्न हुई हैं। वे श्मशान में रहते हैं किन्तु तीनों लोकों के स्वामी हैं। वे भयंकर रूपवाले हैं तो भी शिव अर्थात् कल्याणकारी-सौम्य मूर्ति कहे जाते हैं। शिव के वास्तवीक तत्त्व को समझनेवाला कोई है ही नहीं।'

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः।।

(कुमारसंभव, सर्ग 5/78)

अर्थात्- वे ही सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं। उन्हें खेती, व्यापार, नौकरी की क्या आवश्यकता है। वे नंगे रहें, चाहे गजचर्म पहनें या दुकूल रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित हों। वे चाहे शरीर में साँप लपेटें या दिव्य रत्नजटित आभूषण धारण कर लें। वे त्रिशूल, खप्पर आदि लें या उनके ललाट पर चन्द्रमा चमकते रहें। इससे उनके तात्त्विक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता तथा न इससे उनकी

विश्वविग्रहता या विश्वस्वामिता में कोई अन्तर आनेवाला है।

वास्तव में त्यागमूर्ति शिव ही सम्पूर्ण ज्ञानियों, योगियों, संतों एवं महात्माओं और ऋषि-मुनियों के आदर्श, ध्येय एवं ज्ञेय हैं।

विश्व-ब्रह्माण्ड के समस्त जीवों की सब प्रकार की तपस्या का फल जिसकी इच्छामात्र से पूर्ण होता है वही श्रीमहादेव हिमालय में तपस्या क्यों कर रहे हैं? इसका उत्तर देने की इच्छा करते हुए कालिदास कुमारसम्भव में कहते हैं-

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।
स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार।।

(कुमार. 1/57)

अर्थात्- उसी स्थान में यथाविधि प्रज्वलित अग्नि का आधान(आश्रय ले) कर- जो अग्नि उनकी भूमि प्रभृति अष्टमूर्तियों में एक प्रधान मूर्ति है उसी अग्नि का आधान कर- भगवान् महादेव ने स्वयमेव समस्त तपस्या के फलदाता होने पर भी न जाने किस कामनासिद्धि के लिये स्वयं तपस्या प्रारम्भ की।

भक्तों के कल्पवृक्ष शंकर ने आप्तकाम होते हुए भी भक्ति-रूपा प्रेममूर्ति पार्वती की ही मनोकामना पूर्ण करने के लिये इस मनोहारिणी तपोलीला को प्रारंभ किया था, इसमें सन्देह नहीं।

मदनदहन की लीला के रहस्य पर कवि ने अपने विचार कुमारसंभव में लिपिबद्ध किये हैं। देवदेव श्रीमहादेव के साथ पार्वती के मिलन के लिये, श्रीभगवान् के साथ प्रेमभक्ति की मूर्त प्रतिमा श्रीपार्वती के चिरकांक्षित समागम के लिये बीच में मध्यस्थ बनने के लिये कामदेव आकर वासना-राज्य की सृष्टि करने में प्रवृत्त हो गया। पर यह काम का राज्य था, वह प्रेम का अर्थात् निष्काम अनुराग का राज्य नहीं था। इस राज्य में क्या कभी भक्त के साथ भगवान् का मिलन हो सकता है? काम के सम्पर्क से प्रेम कलुषित हो जाता है, हृदय भोग में आसक्त हो जाता है, प्रेम सूख जाता है, भक्त कामुक हो उठता है। ऐसी अवस्था में भक्त के साथ भगवान् का मिलन कभी भी नहीं हो सकता। इसी कारण श्रीमहादेव का तृतीय नेत्र प्रज्वलित हो उठा और उससे विवेक और वैराग्य-रूप ज्योतिःपुञ्ज निकला और उसने काम को भस्मसात् कर दिया। फलस्वरूप पार्वती की प्रेमरूपा भक्ति पूर्णता को प्राप्त हुई। संक्षेप में यही महादेव की मदन-दहन लीला है।

देवताओं के प्रति ब्रह्माजी के मुख से कालिदास भगवान् शिव की महिमा के संदर्भ में निम्नलिखित श्लोक कहलवाते हैं-

स हि देवः परं ज्योतिस्तमः पारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना।। (कुमारसं. 2/58)

अर्थात् वे महादेव तमोगुणातीत परात्पर ज्योतिःस्वरूप हैं, परमात्मा हैं, उनके महिमातिशय

को न विष्णु जानते हैं न मैं जानता हूँ।

महाकवि कालिदासकृत 'मेघदूत' का गीतिकाव्य के रूप में भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान है। यह गीतिकाव्य धनपति कुबेर के द्वारा दण्डित अपने भृत्य-एक यक्ष के वर्षभर के लिये निर्वासित जीवन का अभिलेख मात्र नहीं है, प्रत्युत यह तो भगवान् चन्द्रशेखर की महिमा से ओतप्रोत गीतिमय काव्यरचना है। इस गीतिकाव्य में महाकवि ने भगवान् शिव की महिमा का पुष्कल गान किया है और इस प्रकार उनके प्रति अपना प्रणतिभाव व्यक्त किया है।

मेघूदत में मेघ के माध्यम से कालिदास ने भगवान् शिव के चरणों में अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा उड़ेल दी है। उज्जयिनी में भगवान् महाकाल की सांध्य-अर्चना के समय अपनी सेवाञ्जलि अर्पित करने का वे मेघ से अनुरोध करते हैं। यहाँ मेघ के माध्यम से भगवान् शिव के प्रति कवि ने अपना ही श्रद्धान्वित भक्तिभाव व्यक्त किया है।

भगवान् त्रिलोचन का वाहन वृष है अर्थात् वे वृष को अपने वश में करके उस पर आसीन होते हैं। वृष काम का प्रतीक है। इसके द्वारा कवि का संकेत है कि 'काम' भगवान् शिव के वशीभूत है। इसीलिये मेघदूत में काम शिव के प्रदेश में प्रवेश करने का साहस नहीं करता। वह वहाँ चाप चढ़ाने में भी डरता है।

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद् वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्। (उत्तरमेघ 10)

मेघ इच्छाचारी है। आकाश में वह स्वेच्छा से विचरण करता है। इसीलिये कालिदास ने मेघ को कामरूप प्रकृति-पुरुष कहा है -

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः। (पूर्वमेघ - 6)

अतः यक्ष कामरूप मेघ से उस अलका नगरी को जाने का अनुरोध करता है, जिसके महल उस नगरी के बाहरी उद्यान में विराजमान भगवान् चन्द्रमौलि के मस्तक पर सुशोभित चन्द्र की विच्छुरित चन्द्रिका से धवलित हैं। यहाँ महाकवि का संकेत है कि काम-तत्त्व को अपने कल्याण के लिये शिव के सांनिध्य में निगृहीतभाव से रहना ही श्रेयस्कर है। मेघदूत काव्य शिवात्मक चैतन्य की प्राप्ति का संकेत देता है। इस प्रकार महाकवि ने 'मेघदूत' के समग्र परिवेश को भगवान् शिव की महिमा से सम्पृक्त निरूपित किया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में महाकवि कालिदास ने वासनाजन्य प्रेम को नकारा है और केवल उसी प्रेम को स्वीकृति प्रदान की है जो अनुताप की अग्नि में निरन्तर तपकर अन्त में कुन्दन की भाँति खरा, पवित्र और दिव्य प्रमाणित होता है। भगवान् शिव की महिमा का गान नाटक के प्रारम्भ में ही महाकवि ने किया है - जिसका उल्लेख पहले ही हो चुका है।

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री.....

(अभिज्ञा. 1/1)

इस प्रकार कालिदास ने नाटक की नान्दी में भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों का उल्लेख किया है। ये अष्ट मूर्तियाँ हैं-सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश। महाकवि ने इन अष्टमूर्तियों के लिये **'प्रत्यक्षाभिः'** यह पद प्रयुक्त किया है अर्थात् ये आठ मूर्तियाँ संसार में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती हैं। इससे कालिदास का संकेत है कि इन प्रत्यक्ष मूर्तियों को धारण करनेवाले इस जगत् के नियामक की सत्ता संदेह से परे है। बल्कि सत्य तो यह है कि विश्व का प्रत्येक कण उनकी सत्ता को व्यक्त करता है।

तत्त्वज्ञ होने के कारण उन्होंने भगवान् शिव से कभी अर्थ-काम की लालसा नहीं की, अपितु शिवसायुज्य या कैवल्य की ही कामना करते रहे। वे भगवान् नीललोहित से किसी सांसारिक वस्तु की याचना न करते हुए उनसे जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्रदान करने-हेतु विनय करते हैं -

ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः। (अभिज्ञा. 7/35)

अर्थात् सर्वशक्तिमान् स्वयंभू शिव मेरे पुनर्जन्म को निवृत्त कर दें।

मालविकाग्निमित्र नाटक की नान्दी में उन्होंने सामाजिकों के लिये भगवान् से प्रार्थना की है कि वे उनकी तामसी वृत्ति का शमन करें ताकि उन सबकी सन्मार्ग में प्रवृति हो।

सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः।। (माल. 1/1)

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय नाटक की नान्दी में उन्होंने स्थिर भक्तियोग से सुलभ भगवान् शंकर से सभी को निःश्रेयस प्रदान करने की प्रार्थना की है।

स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः।। (विक्र. 1/1)

महाकवि की यह विशेषता है कि उनकी आराधना में व्यापक लोकमङ्गल की कामना निहित रहती है। वे भगवान् शिव से सदा जनकल्याण की ही याचना करते रहे और यही उनके शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान तथा उनकी यथार्थ शिवोपासना है। यही भारतीय धर्म और दर्शन का अन्तिम लक्ष्य भी है।

(यह लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के 'शिवोपासनांक' तथा रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा 1976 में प्रकाशित 'कालिदास-ग्रन्थावली' पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁